(ग) अथ अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्।

''अतोम्[1] 7.1.24

अतोऽङ्गात् क्लीवात् स्वमोरम्। अमि पूर्वः-ज्ञानम्। 'एङ्ह्रस्वाद-' इति हल्लोपः-हे ज्ञान।

व्याख्याः अदन्त नपुंसकलिङ्ग अङ्ग से पर 'सु' और 'अम्' को 'अम्' आदेश हो।

स्वमोर्नपुंसकात्' सूत्र से 'सु' और 'अम्' को अम् इसीलिए विधान किया गया है।

ज्ञानम्—अदन्त ज्ञान शब्द के प्रथमा के एक वचन में 'सु' को 'अम्' आदेश हुआ। तब 'अमि पूर्वः' से पूर्वरूप होने पर रूप सिद्ध हो गया।

हे ज्ञान—सम्बुद्धि में अम् आदेश और पूर्वरूप होने पर 'हे ज्ञानम्' बन जाने पर 'एङ्हस्वात् सम्बुद्धिः' से सम्बुद्धि के हल् मकार का लोप हुआ।

नपुंसकाच्च 7.1.11

क्लीबादौङः शी स्यात्। भसंज्ञायाम्।

व्याख्याः नपुंसक अङ्ग से पर औङ् को 'शी' आदेश हो। औङ् और औट् का बोधक है। ज्ञान शब्द से प्रथमा के द्विवचन में 'ज्ञान औ' इस दशा में नपुंसक अङ्ग ज्ञान से पर औङ को 'शी' आदेश हआ। 'शी' में स्थानिवद् से प्रत्यत्व लाने पर प्रत्यय के आदि शकार का 'लक्वतद्धिते' से इत्संज्ञा होकर लोप गया। तब 'ज्ञान+ई' यह स्थिति बनी।

भसंज्ञायामिति-पूर्वोक्त स्थिति में अजादि प्रत्यय होने से पूर्व 'ज्ञान' की भसंज्ञा संज्ञा[1] होने पर—

[6]यस्येतिॅ चॅ 6.4.148

ईकारे तद्धिते च परे भस्येवर्णावर्णायोर्लोपः। इत्यल्लोपे प्राप्ते-

व्याख्याः ईकार और तद्धित प्रत्यय परे रहते भसंज्ञक अङ्ग के इवर्ण और अवर्ण का लोप हो।

यहाँ सूत्र में स्थित 'यस्येति' इस पद का 'यस्य+ईति' यह च्छेद है।

'ई' और 'अ' का समाहार अर्थ में द्वन्द्व समास करने पर 'अ इ' इस स्थिति में इकार को यण् यकार आदेश होता है, वह यकार आगे वर्तमान आकार से मिलकर 'य' शब्द बन जाता है। उससे षष्ठी विभक्ति आने पर यस्य पद बनकर अर्थ होता है 'इवर्ण और अवर्ण का'।

'ईति' यह द्वितीय पद है और 'ईति' शब्द के सप्तमी विभक्ति के एकवचन का रूप है। इसलिये अर्थ निकलता है 'ईकार परे रहते'।

'च' के द्वारा पूर्व सूत्र नस्तद्धते से 'तद्धिते' पद का संग्रह होता है। तब 'तद्धित परे रहते' यह अर्थ प्राप्त होता है।

इत्यल्लोपे—'ज्ञान ई' यहां भसंज्ञक अङ्ग ज्ञान के अन्त्य अकार का ईकार परे होने से लोप प्राप्त हुआ।

(वा) औङः श्यां प्रतिषेधो वाच्यः। ज्ञाने।

व्याख्याः औङ् के स्थान में होने वाले आदेश 'शी' परे रहते 'यस्येति च' सूत्र की प्रवत्ति न हो अर्थात् अकार का लोप न हो।

---

1. यद्यपि औट् तक सर्वनामस्थान है और सर्वनामस्थान प्रत्ययों की 'भ' संज्ञा का वर्णन किया गया है। तथापि सर्वनामस्थानसंज्ञासूत्र 'सुडनपुंसकस्य' से नपुंसकलिङ्ग के सुट् प्रत्ययों की सर्वनामस्थासंज्ञा का निषेध होने से भंसंज्ञा प्राप्त होती है। यचि भम् से भ संज्ञा प्राप्त हुई।

ज्ञाने–'ज्ञान+ई' इस दशा में 'औङः–' इस वार्तिक से अकार लोप का निषेध होने पर गुण एकादेश होकर रूप सिद्ध हुआ।

जश्शसोः शिः 7.1.20

क्लीबादनयोः शिः स्यात्

व्याख्याः नपुंसकलिङ्ग अङ्ग से परे जस् और शस् को 'शि' आदेश हो।

नपुंसकलिङ्ग अङ्ग ज्ञान से पर 'जस्' और 'शस्' को 'शि' आदेश हुआ, शि का शकार इत्संज्ञक है। तब 'ज्ञान+ई यह स्थिति बनी।

शि सर्वनामस्थानम् 1.1.42

शि इत्येतत् उक्तसंज्ञं स्यात्।

व्याख्याः 'शि' यह सर्वनामस्थानसंज्ञक हो।

'ज्ञान+इ' यहाँ 'शि' की सर्वनामस्थान संज्ञा हुई।

नपुंसकस्य[6] झलचः[6] 7.1.72

झलन्तस्याजन्तस्य च क्लीबस्य नुम् स्यात् सर्वनामस्थाने।

व्याख्याः झलन्त और अजन्त नपुंसकलिङ्ग अङ्ग को 'नुम्' आगम हो सर्वनामस्थान परे रहते।

'नुम' का 'उम्' इत्संज्ञाक है नकार शेष रहता है।

'ज्ञान+इ' इस दशा में सर्वनामस्थान 'शि' पर है, और 'ज्ञान' अजन्त नपुंसकलिङ्ग है। अतः नुम् आगम प्राप्त हुआ। परन्तु यह आशङ्का होती है नुम् कहां हो–अङ्ग के आदि में मध्य में या अन्त में 1 इसका निर्णय अग्रिम परिभाषा करती है।

मिदचो ऽन्त्या परः[1] 1.1.47

अचां मध्ये योन्त्यः, तस्मात् परस्तस्यैवान्तावयवो मित् स्यात्। उपधादीर्घः'ज्ञानानि। पुनस्तद्वत्। शेषं पुवंत्। एवं धन-वन-फलादयः।

व्याख्याः अचों में जो अन्त्य अच, उसस पर और जिस समुदाय को विधान किया गया हो उसी का अन्त अव्यव के रूप में मित् हो।

प्रकृत में नपुसंकलिङ्ग अङ्ग को नुम् विधान है अतः उसी का अन्त अवयव 'नुम्' होगा।

'ज्ञान इ' यहाँ 'ज्ञान' इस समुदाय का अन्त अवयव अकार के आगे नुम् होगा। तब 'ज्ञानन्+इ' ऐसी स्थिति बनी। पूर्वोक्त स्थिति में **'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ'** से नान्त अङ्ग 'ज्ञानन्' की उपधा को दीर्घ होकर 'ज्ञानानि– रूप सिद्ध हुआ।

द्वितीया में प्रथमा के समान ही रूप बनेंगे, क्योंकि उक्त सारे कार्य दोनों के समान रूप से होते हैं।

शेष ततीया आदि के रूप पुंल्लिङ्ग अकारान्त शब्द के, समान बनेंगे।

प.	ज्ञानम्,	ज्ञाने,	ज्ञानानि।	च.	ज्ञानात्,	ज्ञानाभ्याम्,	ज्ञानेभ्यः।
पं.	हे ज्ञान,	हे ''	हे '' ।	पं.	ज्ञानात्,	''	'' ।
द्वि.	ज्ञानम्,	''	'' ।	प.	ज्ञानस्य,	ज्ञानयोः,	ज्ञानानाम् ।
स.	ज्ञानेन,	ज्ञानाभ्याम्	ज्ञानैः।	स.	ज्ञाने,	''	ज्ञानेषु ।

इसी प्रकार अकारान्त नपुंसकलिङ्ग धन, वन, फल, मुख, नेत्र, जल, अन्न, पुष्प, वत्त (चरित्र, समाचार, छन्द), आज्य (घी), मूल्य (कीमत) ..... चित्त, सत्य, नवनीत (मक्खन) और दैव (भाग्य) आदि शब्दों के रूप बनेंगे।

ध्यान रहे कि नपुंसकलिङ्ग में सभी–अजन्त नथा हलन्त–शब्दों के रूप प्रथमा और द्वितीया में समान होते हैं और ततीया आदि विभक्तियों में पुंल्लिङ्ग के समान।

यदि प्रयोग देखकर अकारान्त शब्दों के लिङ्ग की पहचान करनी हो तो प्रथमा और द्वितीया के प्रयोगों से ही की हो सकती है, ततीया आदि के रूपों में पुंल्लिङ्ग और नपुंसकङ्गि के अकारान्त शब्दों के रूपों में कोई अन्तर नहीं होता।

अद्‌ड डतरादिभ्यः पचभ्यः 7.1.125

एभ्यः क्लीबेभ्यः स्वमोरद्‌ड् आदेशः स्यात्

व्याख्याः डतर आदि पांच नपुंसकलिंग अंगों से पर सु और अम् को अद्‌ड आदेश हो।

डतर आदि सर्वादिगण में आये हैं–**डतर, डतम, अन्य, अन्यतर और इतर।** डतर, डतम प्रत्यय हैं। अतः प्रत्ययग्रहण परिभाषा से तदन्त कतर, कतम आदि शब्द ही लिये जायेंगे। 'अन्यतर' शब्द अव्युत्पन्न प्रातिपदिक हैं, डतरप्रत्ययान्त नहीं, इसीलिये इसका पथक् ग्रहण किया है।

कतर–(दो में कौन) शब्द डतरप्रत्ययान्त है। अतः इससे पर 'सु' और 'अम्' को अद्‌ड् आदेश हो गया। डकार की इत्संज्ञा हुई। केवल 'अद्' शेष रहा।

टेः 6.4.143

डिति भस्य टेर्लोपः। कतर्, कतरद्। कतरे। कतराणि। हे कतरत् शेषं पुंवत्।
एवं कतमत्, इतरत्, अन्यत्, अन्यतरत्।
अन्यतमस्यु तु अन्यतममित्येव।

व्याख्याः डित् परे रहते भसंज्ञक अङ्ग की टि का लोप हो।

'कतर अद्' अस दशा में भसंज्ञक अङ्ग 'कतर', की टि–रेफोत्तरवर्ती अकार'का डित् 'अद्' परे होने से लोप हो गया। तब 'वावसाने– से अवसान दकार को विकल्प से चर तकार होकर रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में दकार ही रहेगा–कतरद्।

द्विवचनों में औ को शी आदेश और 'यस्येति च' से प्राप्त अकार के औङःश्यां प्रतिषेधो वाच्यः' से निषेध होने पर गुण एकादेश होकर करते रूप बना।

कतराणि–जस् को शि आदेश होने पर, उसकी सर्वनामस्थान संज्ञा, उपधा दीर्घ और णत्व होकर रूप सिद्ध हुआ।

हे कतरत्–सम्बुद्धि में 'अद्‌ड्' आदेश और टि का लोप होने पर 'हे कतरद् इस दशा में चर् विकल्प से होकर प्रथमा के समान ही रूप बनेंगे। कतरत् के तकार का लोप नहीं होता, क्योंकि 'कतर अद्' यहां अङ्ग ह्रस्वान्त नहीं, टि का लोप होने से वह हलन्त है जो ह्रस्वान्त नहीं क्योंकि इसमें अकार 'अद्' का है– अपना अकार तो लुप्त हो चुका है।

शेष रूप इसके पुंल्लिङ्ग के समान ही बनेंगे।

इसी प्रकार कतम का–कतमत्, इतर का–इतरत्, अन्य का अन्यत्, अन्यतर का–अन्यतरत् रूप अद्‌ड् ओदश होकर बनेंगे। इन्हीं पाँच में अदड् का विधान किया गया है।

अन्यतम शब्द का तो 'अन्यतमम्' ऐसा ही रूप बनेगा अर्थात् अदड् आदेश न होगा क्योंकि पूर्वोक्त पांच शब्दों में ही अद्‌ड् आदेश है। डतमप्रत्ययान्त भी यह नहीं, यह तो अन्यतर शब्द के समान अव्युत्पन्न प्रातिपदिक है।

वा. एकतरात् प्रतिषेधो वक्तव्यः। एकतरम्।

व्याख्याः एकतर शब्द से पर 'सु' और 'अम्' को 'अद्‌ड' प्राप्त था, उसका वार्तिक से निषेध हुआ। तब ज्ञान शब्द के समान :अम्' आदेश होकर एकतरम रूप सिद्ध हुआ।

इसके रूप ज्ञान शब्द के समान ही बनते हैं।

(अकारान्त शब्द समाप्त।)

आकारान्त शब्द

ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य 1.2.47

अजन्तस्येत्येव। श्रीपम्–ज्ञानवत्।

व्याख्याः अजन्त प्रातिपादिक को नपुंसकलिंग में ह्रस्व हो।

श्री पा (लक्ष्मी का पालन करने वाला) शब्द अजन्त है। इसके अन्त्य आकार को 'प्रकृत–' सूत्र से ह्रस्व होने पर 'श्रीप' बन गया। ह्रस्वान्त बन जाने से ज्ञान शब्द के समान 'श्रीपम्, श्रीपे, श्रीपाणि' इत्यादि रूप बनेंगे।

'श्रीपाणि'– में णत्व अखण्ड पर न होने से 'अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेपि से नहीं हो सकता। (एकाजुत्तरपदे णः' सूत्र से होगा।) इसी प्रकार 'श्रीपेण' और 'श्रीपाणाम्' में भी उक्त सूत्र से ही णत्व होगा।

इस सूत्र के अनुसार नपुंसकलिङ्ग में कोई भी शब्द दीर्घान्त नहीं रह जाता। केवल अदन्त, इदन्त, उदन्त और ऋदन्त शब्द ही नपुँसकलिङ्ग में रहेंगे। एकारान्त ओकारान्त, ऐकारान्त और औकारान्त शब्द प्रायः नहीं हैं, जो कोई है भी, ह्रस्व कर देने से वे भी इदन्त और उदन्त बनजायेंगें

आकारान्त शब्द समाप्त।

इकारान्त शब्द

स्वमोर्नपुंसकात् 7.1.23

लुक् स्यात्। वारि।

व्याख्याः नपुंसकलिङ्ग शब्दों से पर 'सु' और 'अम्' का लोप हो।

ह्रस्व अकारान्त शब्दों को छोड़कर सभी अजन्त तथा हलन्त शब्दों से पर 'सु' और 'अम्' का लोप हो जाता है।

वारि (जल) शब्द से पर 'सु' और 'अम्' का लोप हो जाने से वारि यही रूप सिद्ध होगा।

इकोचि विभक्तौ 7.1.73

इगन्तस्य नुम् अचि विभक्तौ। वारिणी। वारीणि। 'न लुमता-' इत्यस्यानित्यत्वात् पक्षे सम्बुद्धिनिमित्तो गुणः–हे वारे, वारि। आङो ना-वारिणा। 'घेर्ङिति' इति गुणे प्राप्ते-

व्याख्याः इगन्त अङ्ग को नुम् आगम हो अजादि विभक्ति परे रहते।

मिदचोन्त्यात्परः' परिभाषा से अङ्ग के अन्त्य अच् के आगे 'नुम्' होगा, वह अङ्ग का अवयव समझा जायेगा।

वारिणी–वारि शब्द के प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में 'वारि औ' यह स्थिति हुई। इस दशा में 'औ' को शी आदेश हुआ तब अजादि विभक्ति 'ई' परे रहते अङ्ग वारि को नुम् आगम हुआ। वह अन्त्य अच् इकार के आगे हुआ। वारिन् ई' ऐसी स्थिति हो जाने पर 'अट्कुप्वाङ्नुमव्यवायेपि' सूत्र से वारिणी रूप सिद्ध हो गया।

वारीणी–प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में जस् और शस् को जश्शसोः शि' सूत्र से 'शि' हुआ और उसकी शि सर्वनामस्थानम् से सर्वनामस्थान संज्ञा होने पर अङ्ग को नुम् आगम हुआ। 'वारिन्+इ' इस दशा में सर्वनामस्थान परे होने से 'सर्वनामस्थाने–' सूत्र से नान्त उपधादीर्घ और अट्कुप–' सूत्र से णत्व होकर रूप सिद्ध हुआ। न लुमतेति–'न लुमताङ्गस्य' सूत्र के अनित्य होने से पक्ष में सम्बुद्धिनिमित्त गुण होगा। इसलिये 'हे वारे' 'हे वारि' ये दो रूप सम्बुद्धि में बनेंगे।

इसकी अनित्यता का प्रमाण प्रकृत सूत्र 'इकोचि विभक्तौ' में 'अचि' ग्रहण है। 'अचि' ग्रहण हलादि विभक्तियों में नुम्वारण के लिये किया गया हैं परन्तु हलादि विभक्तियो में नुम् होने पर भी पदान्त होने के कारण 'नलोयः प्रातिपदिकान्तस्य' से उसका लोप हो जायेगा। अतः हलादि–विभक्तियों में वारण करना व्यर्थ है। सम्बुद्धि भी हलादि विभक्ति है, वहां नुम् की आपत्ति हो सकती है और यहां 'न ङिसम्बुद्धयोः' से नकार के लोप का निषेध हो जाने से नकार श्रवण होने लगेगा। परन्तु यह आपत्ति भी ठीक नहीं, क्योंकि सम्बुद्धि का लोप 'लुक्' शब्द से

हुआ है। अतः लुमता शब्दसे लुप्त होने के कारण प्रत्ययलक्षण कार्य को 'न लुमताङ्गस्य' निषेध कर देगा, नुम् होगा ही नहीं। अतः सम्बुद्धि में नुम्वारण के लिए भी 'अचि' की आवश्यकता नहीं है। अतः व्यर्थ होकर ज्ञापन करता है कि 'न लुमताङ्गस्य' विधि अनित्य है। जब इसकी प्रवत्ति नहीं होगी, उस पक्ष में प्रत्ययलक्षण कार्य नुम् हो जायेगा। उसके वारण के लिये 'अचि' ग्रहण चरितार्थ है।

'वारि सु' इस अवस्था में 'सु' का लोप होने पर 'प्रत्ययलोपे प्रत्यय लक्षणम् से लुप्त–सु प्रत्यय–निमित्तक 'सम्बुद्धौ 'च' से गुण कार्य प्राप्त है। सु का लोप लुक् शब्द से विहित होने के कारण 'न लुमतांगस्य' निषेध कर देता है परन्तु यह सूत्र नित्य नहीं, अतः जब इसकी प्रवत्ति होगी, तब लुप्तप्रत्ययनिमित्तक गुण कार्य न होकर 'वारि' रूप बनेगा और जब इसकी प्रवत्ति नहीं होगी, तब पूर्वोक्त गुण होकर 'हे वारे' रूप बनेगा।

आङो नेति–'वारि+टा' इस अवस्था में आङा नास्त्रियाम्' से 'टा' को 'ना' आदेश और अट्कुप्वाङ्–' से नकार को णकार होने से 'वारिणा' रूप सिद्ध हुआ।

घेर्ङिति इति–चतुर्थी के एकवचन में 'वारि+ए' इस अवस्थामें घेर्ङिति' से गुण प्राप्त होने पर अग्रिम की प्रवत्ति होती है।

(वा) वद्धयौत्वतज्वद्भावगुणेभ्यो नुम् पूर्वविप्रतिषेधेन।

वारिणे। वारिणः। वारिणः। वारिणोः। 'नुमचिर-' इति नुट्- वारीणाम्। वारिणि। हलादौ हरिवत्।

व्याख्याः वद्धि, औत्व, तज्वद्भाव और गुण की अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से (तुल्यबलविरोध होने पर पूर्व की प्रबलता से) नुम् पहले हो।

वारिणे–'वारि+ए' में गुण की अपेक्षा पूर्वविप्रतिषेध से नुम् पहले हुआ। नुम् होने पर 'वारिन्+ए' ऐसी स्थिति बनी। क्योंकि अङ्ग का अवयव ही नुम् होता है, नुम् होने पर अंग 'वारिन्' कहलायेगा, अतः अंग के अजन्त न होने से घिसंज्ञा न हुई, अतएव गुण न हुआ। तब अट्कुप्' से नकार को णकार होकर 'वारिणे' रूप सिद्ध हुआ।

वद्धि की अपेक्षा नुम् की प्रबलता का उदाहरण–प्रियसखीनि। 'प्रियः सखा यस्य, तत्कुलं प्रियसखि' यह प्रियसखि शब्द की व्युत्पत्ति है। अर्थात् जिस कुल को मित्र प्यारा हो, वह कुल 'प्रियसखि' कहलायेगा। 'प्रियसखि' शब्द से सर्वनामस्थान जस् में संख्युर–' से णिद्वद्भाव होने से 'अचो–' से अंग को वद्धि प्राप्त होती है और नुम् भी। इस वार्तिक से नुम् पहले हुआ तो 'प्रियसखीनि' रूप बना।

औत्व की अपेक्षा नुम् की प्रबलता का उदाहरण–'वारिणि' है। वारि शब्द की सप्तमी के एकवचन में 'वारि+इ' इस अवस्था में 'अच्च घेः' से 'ङि' को औत्व और 'इकोचि विभक्तौ' से अंग को नुम् प्राप्त होने पर 'वद्धयौ–' वार्तिक से पहले 'नुम्' हुआ। अतएव 'वारिणे' रूप बना।

तज्वद्भाव की अपेक्षा नुम् की प्रबलता का उदाहरण–'प्रियक्रोष्टूनि' है। इस की भी व्युत्पत्ति 'प्रियसखि' शब्द के समान है। यहां पर जस् और शस् में तज्वद्भाव अैर नुम् दोनों प्राप्त है। वार्तिक से नुम् पहले हुआ।

वारिणः–प्चमी और षष्ठी के एकवचन का रूप है। यहां भी 'घेर्ङिति' से गुण की अपेक्षा 'नुम्' पूर्वविप्रतिषेध से हुआ।

वारिणोः–षष्ठी और सप्तमी के द्विवचन का रूप है। यह रूप भी पूर्ववत् बनता है।

वारीणाम्–षष्ठी के बहुबन में 'वारि+आम्' इस अवस्था में 'ह्रस्वनद्यापो नुट्' से आम् को नुट् और 'इकोचि विभक्तौ' से अङ्ग को 'नुम्' आगम प्राप्त हुआ। 'नुम्–अचिर तज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधन' वार्तिक के द्वारा पूर्वविप्रतिषेध से 'नुट्' पहले हुआ। तब 'नामि' से दीर्घ और नकार को णत्व होकर रूप सिद्ध हो गया।

यद्यपि 'नुम्' होने पर भी 'नुट्' के समान नकार ही रहता है, तथापि 'नुम्' अङ्ग का अवयव होता है, 'आम्' का नहीं, अतः 'नाम्' पर न मिलने से 'नाभि' से दीर्घ नहीं हो सकता, नुम् होने से 'वारिन्' आदि अङ्ग नकारान्त बन जाता है, ह्रस्वान्त नहीं रहता। 'नुट्' आम् को होता है, अतः वह 'आम्' का अवयव बनता है, फलस्वरूप 'नाम्' भी परे मिल जाता है। और अङ्ग ह्रस्वान्त ही रह जाता है, जिससे कि अङ्ग को दीर्घ हो जाता हैं दोनों का नकार मात्र रहने पर भी यह अन्तर बना रहता है। इसलिये नुम् की अपेक्षा नुट् की प्रबलता का सफल विधान किया

गया है निष्फल नहीं।

इसी प्रकार सभी इकारान्त नपुंसकलिंग शब्दों के रूप बनेंगे।

अस्थि दधि-सक्थ्यक्षणा मनङुदात्तः 7.1.75

एषामनङ् स्यात् टादावचि।

व्याख्याः अस्थि (हड्डी), दधि (दही), सक्थि (ऊरु जंघा) और अक्षि (आँख) शब्दों को अनङ् आदेश हो टा आदि अजादि विभिक्ति परे रहते।

दधि शब्द के रूप प्रथमा, संबोधन और द्वितीया में तो 'वारि' शब्द के समान ही बनेंगे। टा में प्रकृत सूत्र से अनङ् आदेश होने पर 'दध् अन् आ' ऐसी स्थिति बनती है।

अल्लोपोनः 6.4.134

अङ्गावयवोसर्वनामस्थान-यजादि [1]—स्वादिपरो योन् तस्याकारस्य लोप। दघ्ना दघ्नः 2 दघ्नोः2।

व्याख्याः अंग का अवयव और सर्वनामस्थान भिन्न यकारादि तथा अजादि प्रत्यय पर हो जिससे, ऐसा जो अन् उसके अकार का लोप हो।

'दध्ना—दध् अन् आ' इस दशा में सर्वनामस्थानभिन्न अजादि प्रत्यय टा परे होने से अङ्गावयव अन् के अकार का लोप होकर 'दध्ना' रूप बन गया ।

दध्ने—'दधि+ए' यहां अनङ् आदेश होने पर प्रकृत सूत्र से अन् के अकार का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

दध्नः—ङसि और ङस् में पूर्ववत् अनज आदेश तथा अकार का लोप होने पर उक्त रूप बनता है।

दध्नोः—यह रूप ओस् में पूर्वोक्त प्रकार से ही सिद्ध होता है।

विभाषा ङि-श्योः 6.4.136

अङ्गावयवोसर्वनामस्थानपरो योन्, तस्याकारस्य लोपो वा स्यात्, ङिश्यो परयोः। दध्नि, :दधनि। शेषं वारिवत्। एवमस्थिसक्थि-अक्षि।

व्याख्याः अन् अङ्ग का अवयव हो और सर्वनामस्थान प्रत्यय जिससे परे न हो,उस अन् के अकार का विकल्प से लोप हो ङि और शि परे रहते।

दध्नि—सप्तमी के एकवचन में अनङ् आदेश होने पर 'दध् अन् इ' इस दशा में अन् के अकार का प्रकृत सूत्र से विकल्प से लोप हुआ। तब 'दध्नि' रूप बना। लोपाभाव पक्ष में दधनि।

शेषमिति—दधि शब्द के शेष रूप वारि शब्द के समान सिद्ध होंगे।

एवमिति—इसी प्रकार अस्थि, सक्थि और अक्षि शब्द के भी रूप बनेंगे।

अस्थि, अस्थिनी, अस्थीनि, हे अस्थि, हे अस्थे। अस्थ्ना। अस्थ्ने। अस्थनः2। अस्थ्नाम्। अस्थ्नि, अस्थनि। सक्थि, सक्थिनी, सक्थीनि। हे सक्थि, हे सक्थे। सक्थ्ना। सक्थ्ने। सक्थ्नः2। सक्थ्नोः2। सक्थ्नाम्। सक्थ्नि, सक्थनि। अक्षि, अक्षिणी, अक्षीणि। हे अक्षि, हे अक्षे। अक्ष्णा। अक्ष्णे। अक्ष्णः2। अक्ष्णोः। अक्ष्णाम्। अक्ष्णि, अक्षणि।

इकरान्त शब्द समाप्त।

दीर्घ ईकारान्त शब्द

दीर्घ ईकारान्त शब्द भी 'ह्स्वो नपुंसके प्रातिपादिकस्य' सूत्र से ह्स्व हो जाने के कारण ह्स्वान्त ही बन जाते हैं। पहले भी कहा जा चुका है कि नपुंसकलिंग में शब्द दीर्घान्त नहीं रह पाता। अतएव ह्स्वान्त होने से दीर्घ ईकारान्त शब्दों के रूप भी 'वारि' शब्द के समान ही सिद्ध होगे।

ततीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य 7.1.74

प्रवत्तिनिमित्तैक्ये भाषितपुंस्कमिगन्तंक्लीबं पुंवद् वा टादावचि। सुधिया, सुधिनेत्यादि। मधु, मधुनी, मधूनि।

सुलु, सुलुनी, सुलूनि। सुल्वा, सुलुना। धात, धातणी, धातणि। हे धातः, हे धात। धात्रा, धातणा। धातृणाम् एवं ज्ञात आदयः।

व्याख्याः **ततीयादिष्विति**— प्रवत्तिनिमित्त एक होते हुए जो शब्द पुंस्त्वको रहता हो अर्थात् जो शब्द पुंल्लिङ्ग में भी प्रयुक्त होता हो—उस इगन्त नपुंसकलिङ्ग शब्द को पुंवद्भाव हो अर्थात् पुंल्लिङ्ग के समान कार्य हो, टा आदि अजादि विभक्ति परे रहते।

प्रवत्तिनिमित्त कहते हैं, शब्द के प्रयोग के कारण को, जिस निमित्त से शब्द का प्रयोग होता है अर्थात् अर्थ।

भाषितपुंस्क—उस शब्द को कहते हैं जिसका प्रयोग पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों जगह हो और प्रवत्तिनिमित्त—अर्थ भी दोनों लिङ्गों में समान हो।

निम्नलिखित कारिका में भाषितपुंस्क की परिभाषा और उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण द्वारा बहुत स्पष्ट किया गया है—

यन्निमित्तमुपादाय पुंसि शब्दः प्रवर्त्तते।
क्लीबवत्तौ तदेव स्यादुक्तपुंस्क तदुच्यते।
पीलुर्वक्षः फलं पीलु 'पीलुने' न तु 'पीलवे'
वक्षे निमित्तं पीलुत्वं तज्जत्वं तत्फले पुनः। इति।

अर्थात्—जिस निमित्त (अर्थ) को लेकर पुंल्लिङ्ग में शब्द प्रवत्त होता है, यदि नुपंसकलिङ्ग में प्रवत्ति का भी वही निमित्त (अर्थ) हो तो उस शब्द को भाषितपुंस्क कहा जाता है। पीलु वक्ष को भी कहते हैं और उसके फल को भी। अतः पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग में प्रयोग होने पर भी दोनों का प्रवत्तिनिमित्त (अर्थ) भिन्न होने से यह शब्द भाषितुंस्क नही। अतएव फल अर्थ में नपुंसकलिङ्ग में—पीलुने' यही रूप बनेगा, पुंल्लिङ्ग का जैसा—'पीलवे' नहीं। पीलु शब्द की वक्ष अर्थ में प्रवत्ति का निमित्त पीलुत्व है और फल अर्थ में तज्जत्व अर्थात् पीलुजत्व है।

सुधीशब्द पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों जगह प्रयुक्त होता है और दोनों स्थलों में इसका प्रवत्तिनिमित्त—अर्थ—अच्छी बुद्धिवाला है। अतः यह भाषितपुंस्क शब्द है इसको पुंवद्भाव होगा। पुंवदभाव होने से पुंल्लिङ्ग के जैसे रूप भी बनेंगे।

गालव के मत में पुंवद्भाव होता है, पाणिनि के मत में नहीं, अतः विकल्प फलित होता है। अतएव दो—दो रूप बनेंगे।

सुधिया—टा में 'सुधि आ' इस अवस्था में पुंवद्भाव होने पर 'अचि श्नु—' सूत्र से इयङ् होकर रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में 'नुम्' होकर 'सुधिना' रूप बनता है।

टा आदि अजादि विभक्तियों में इसी प्रकार पुंवद्भावपक्ष में इयङ्, आदेश और पक्ष में नुम् होकर रूप सिद्ध होंगे।

प्र.	सुधि,	सुधिनी,	सुधीनि।	द्वि.	सुधि,	''	''।
सं.	हे सुधि, हे सुधे	हे ''	हे'' ।	त	सुधिया, सुधिना,	सुधिभ्याम्,	सुधिभिः।
च.	सुधिये, सुधिने,	सुधिभ्याम्,	सुधिभ्यः।	ष.	''	सुधियोः, सुधिनोः,	सुधीनाम् ।
पं.	सुधियः, सुधिनः,	''	'' ।	सं.	सुधियि, सुधिनि,	''	सुधिषु ।

'अनादि' और 'प्रधी' आदि भाषितपुंस्क शब्दों के भी रूप इसी प्रकार पुंवद्भाव होकर सिद्ध होंगे।

(दीर्घ ईकारान्त शब्द समाप्त)

उकारान्त शब्द

मधु—मधु (शहद) के प्रथमा के एकवचन में 'स्वमोर्नपुंसकात्' से सु का लोप होकर रूप सिद्ध हुआ।

मधुनी—औ को 'शी' आदेश और नुम् होकर रूप बना।

मधूनि—जस् शस् को 'शि' आदेश, नुम् उपधादीर्घ होकर रूप बना।

(उकारान्त शब्द समाप्त)

दीर्घ ऊकारान्त शब्द

सुलु—सुलू (अच्छा काटने वाला) शब्द को सर्वप्रथम 'ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से ह्रस्व हुआ। तब ह्रस्व शब्द बना। अतः 'मधु' शब्द के समान ही रूप बनेंगे।

सुलुनी—प्रथमा और द्वितीया के द्विवचन में 'मधुनी' के समान सिद्ध होगा।

सुलूनि—प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन में 'मधूनि' के समान सिद्ध होता है।

इस शब्द का 'अच्छा काटनेवाला' अर्थ—प्रवत्तिनिमित्त पुंल्लिङ् और नपुंसकल्लिङ्ग दोनों लिङ्गों में एक है, अतः यह भाषितपुंस्क है। अतएव ततीयादि अजादि विभक्ति परे रहते पुंवद्भाव होगा। पुंवद्भावपक्ष में 'ओ सुपि' से यण् और अभावपक्ष में 'नुम्' आगम होकर रूप सिद्ध होगा।

सुल्वा—टा में पुंवद्भाव होने पर 'ओः सुपि' से यण् होकर रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में नुम् होकर 'सुलुना' रूप सिद्ध होगा।

प्र.	सुलु,	सुलुनी,	सुलूनि।	च.	सुल्वे, सुलुने,	सुलुभ्याम,	सुलुभ्यः।
सं.	हे सुलु, हे सुलो,	हे "	हे " ।	पं.	सुल्वः, सुलुनः,,	"	" ।
द्वि.	सुलु,	"	" ।	ष.	"	सुल्वोः, सुलुनीः,	सुलूनाम्।
त	सुल्वा, सुलुना,	सुलुभ्याम्,	सुलुभिः।	स.	सुल्वि, सुलुनि,	"	सुलुषि ।

इसी प्रकार अन्य सभी भाषितपुंस्क दीर्घ ऊकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप सिद्ध होंगे।

(दीर्घ ऊकारान्त शब्द समाप्त)

ऋकारान्त शब्द

धात— (धारण करने वाला)—धात शब्द के सु और अम् का लोप होकर यह रूप सिद्ध होता है।

धातणी— 'औ' को शी आदेश, नुम्, णत्व होकर रूप सिद्ध हुआ।

धातृणि—जस् और शस् को 'शि' आदेश, 'शि की सर्वनामस्थान संज्ञा, नुम् और उपधादीर्घ कार्य होने पर णत्व होकर रूप सिद्ध हुआ।

हे धातः—अर् गुण सु का लोप और रेफ को विसर्ग होकर रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में 'हे धात'।

धात शब्द का प्रवत्तिनिमित्त— अर्थ—'धारण करनेवाला' पुंल्लिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग दोनों में एक है—अतः भाषितपुंस्क होने के कारण ततीयादि अजादि विभक्तियों में पुंवद्भाव होकर दो–दो रूप बनेंगे।

धात्रा—टा में पुंवद्भाव पक्ष में यण् होकर रूप सिद्ध हुआ। पक्ष में नुम् और णत्व होकर धातणा रूप बना।

धातणाम्– आम् में पुंवद्भाव में नुट् होकर रूप बनता है—पक्ष में भी 'नुमचिरतज्वद्भावेभ्यो नुट् पूर्वविप्रतिषेधेन' से नुम् की अपेक्षा प्रबल होने से नुट् होकर यही रूप बनता है।

प्र.	धात	धातणी	धातृणि।	च.	धात्रे धातणे	धातभ्याम्	धातभ्यः ।
सं.	हे धातः	हे "	हे " ।	पं.	धातुः धातणः	"	" ।
द्वि.	धात	"	" ।	ष.	"	धात्रोः धातणोः	धातणाम्।
त	धात्रा धातणा	धातभ्याम्	धातभिः।	स.	धातरि धातणि	"	धातषु ।

इसी प्रकार ज्ञात (जाननेवाला), कर्त (करनेवाला), हर्त (ले जाने वाला) जेत (जीतने वाला), और दात (देनेवाला) आदि तन्नन्त और तजन्त शब्दों के रूप भी बनेंगे। दोनों लिङ्गों में एक प्रवत्तिनिमित्त—अर्थ—होने से ये भाषितपुंस्क हैं।

(ऋकारान्त शब्द समाप्त।)

ओकारान्त शब्द

एच इग् ह्रस्वादेशे 1.1.48

आदिश्यामानेषु ह्रस्वेषु मध्ये एच इगेव स्यात्। प्रद्यु, प्रद्युनी, प्रद्यूनि। प्रद्युनेत्यादि। प्ररि, प्ररिणी, प्ररीणि। प्ररिणा। एकदेशविकृतमनन्यवत्। प्रराभ्याम्। सुनु, सुनुनी, सुनूनि। सुनुनेत्यादि। इति अजन्तनपुंसकलिङ्गप्रकरणम्।

व्याख्याः जब ह्रस्व आदेश का विधान हो, तब एच् के स्थान में इक् ही हो अर्थात् एकार और ऐकार के स्थान में इकार तथा ओकार और औकार के स्थान में उकार आदेश हों।

'ह्रस्वो नंपुसके प्रातिपदिकस्य' सूत्र से एजन्त शब्दों को ह्रस्व प्राप्त होता है, पर ह्रस्व हौन हो? इसका निर्णय नहीं, क्योंकि एचों के अपने ह्रस्व वर्ण तो है नहीं, 'एचामपि द्वादश, तेषां ह्रस्वाभावात्' यह पहले कहा गया है। ये एच् संयुक्त स्वर हैं अर्थात् दो–दो स्वर मिल कर बने हैं। अकार और इकार के संयोग से एकार–ऐकार तथा अकार और उकार के संयोग से ओकार–औकार बने हैं। तब एचों की अकार और इकार तथा उकार ह्रस्व प्राप्त होते हैं। इस अवस्था में 'एचः–' सूत्र नियम करता है कि इकार और उकार ही ह्रस्व हों, अवर्ण कभी न हों।

ओकारन्त प्रद्यो (प्रकृष्टा द्यौः यस्मिन्, दिने, सुन्दर आकाशवाला दिन)—शब्द को 'ह्रस्वो–'से ह्रस्व उकार हुआ। तब 'प्रद्यु' बन जाने से 'मधु' शब्द के समान रूप सिद्ध होंगे। इसीलिये 'प्रद्यु, प्रद्युनी, प्रद्यूनि' रूप बने।

प्रद्युना—ततीया के एकवचन टा में 'इकोचि विभक्तौ' से नुम् होकर रूप सिद्ध हुआ।

यद्यपि 'सुन्दर आकाशवाला' यह प्रवत्तिनिमित्त—अर्थ—दोनों लिङ्गों में एक होने से इसे भाषितपुस्क कहा जायेगा, पर पुंवद्भाव नहीं होगा, क्योंकि पुंवद्भाव भाषितपुंस्क इगन्त अङ्ग को होता है। यहां जो 'प्रद्यो' शब्द भाषितपुंस्क है, वह इगन्त नहीं और जो 'प्रद्यु' शब्द इगन्त है, वह भाषितपुंस्क नहीं, क्योंकि ह्रस्वान्त 'प्रद्यु' शब्द केवल नंपुसक ही है, पुंल्लिङ्ग नहीं, पुंल्लिङ्ग में ह्रस्व नहीं होता, शब्द ओकारान्त ही रहता हैं भाषितपुंस्कत्व के लिये शब्द का प्रयोग पुंल्लिङ्ग में भी होना आवश्यक है। 'भाषितपुंस्क' अन्वर्थ संज्ञा है—'भाषितः पुमान् येन' अर्थात् जिस शब्द ने पुल्लिंग को कहा हो और तब नपुंसक को कहता हो, अतः 'प्रद्यु' शब्द के भाषितपुंस्क न होने से पुंवद्भाव नही होता।

प्र.	प्रद्यु,	प्रद्युनी,	प्रद्यूनी।	च.	प्रद्युने	प्रद्युभ्याम्,	प्रद्युभ्यः ।
सं.	हे प्रद्यु, हे प्रद्यो	हे "	हे " ।	पं.	प्रद्युनः,	"	" ।
द्वि.	"	"	" ।	ष.	"	प्रद्युनोः,	प्रद्यूनाम् ।
त.	प्रद्युना,	प्रद्युभ्याम्,	प्रद्युभिः।	स.	प्रद्युनि,	"	प्रद्युषु ।

ऐकारान्त शब्द

प्ररै (अधिक धनवाला–कुल) शब्द में ह्रस्व होकर 'प्ररि' बन जाने पर वारि शब्द के समान रूप सिद्ध होगे।

[1]**प्ररि**–ह्रस्व और सु का लोप होकर रूप सिद्ध होता है।

प्ररिणी–शी आदेश, नुम् णत्व कार्य करने पर रूप सिद्ध होता है।

प्ररीणि–शि आदेश, सर्वनामस्थान संज्ञा, नुम्, उपधादीर्घ और णत्व कार्य होकर उक्त रूप सिद्ध हुआ।

यहां भी 'प्रद्यु' के समान पुंवद्भाव नहीं होता।

एकदेशेति–ऐकार को ह्रस्व इकार होने से यद्यपि एक अवयव में यहां विकार हुआ है, तो भी यह 'रै' शब्द ही रहेगा, भिन्न नहीं होगा।

प्राराभ्याम्–ह्रस्व होने पर 'प्ररि' शब्द में पूर्वोक्त एकदेशविकृतन्याय से रै शब्द है। अतः 'रायो हलि' से ऐकार को आकार होकर रूप सिद्ध हुआ

हलादि विभक्तियों में सर्वत्र आत्व हो जायेगा।

प्र.	प्ररि	प्ररिणी,	प्ररीणि।	च.	प्ररिणे,	प्रराभ्याम,	प्रराम्यः।
सं.	हे " हे प्ररे	हे "	हे " ।	पं.	प्ररिणः	"	" ।
द्वि.	प्ररि	"	" ।	ष.	"	प्ररिणोः	प्ररीणाम् ।
त	प्ररिणा,	प्रराभ्याम्,	प्ररामिः।	स.	प्ररिणि	"	प्ररासु ।

(ऐकारान्त शब्द समाप्त।)

औकारान्त शब्द

सुनौ–(शोभना नौः यस्य कुलस्य तत्, अच्छी नाववाला कुल) शब्द में सर्वप्रथम ह्रस्व हो जायेग। तब रूप 'मधु' शब्द के समान सिद्ध होंगे।